ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में हिन्दी

❑ जयंत विष्णु नार्लीकर

आज का जमाना 'विज्ञान-युग' के नाम से अक्सर जाना जाता है। 'ज्ञान' और 'विज्ञान' में कुछ लोग फर्क करना चाहेंगे। पर आज के इस व्याख्यान में मैं इन दोनों को मानव समाज से हासिल की हुई जानकारी में समाहित करूँगा। इस संदर्भ में जहाँ मैं विज्ञान का जिक्र करूँगा, वहाँ ज्ञान भी अभिप्रेत है। इस संस्थान में हिदी भाषा का विशेष स्थान है और यह स्वाभाविक है कि बदलते माहौल में यह भाषा अपना अग्रणी स्थान कैसे टिकाए रखे इस विषय पर यहाँ चर्चा होती रहे। हिंदी के प्रति आत्मीयता महसूस करने वाले एक वैज्ञानिक की हैसियत से मैं यहाँ कुछ विचार व्यक्त करना चाहूँगा।

इस व्याख्यान में मैं जिन विषयों की (संक्षेप में ही) चर्चा करूँगा उनकी सूची इस प्रकार है:-

1. **स्थित्यंतर**
2. **तकनीक की नई दिशाएँ**
3. **कुछ चिंता के विषय**
4. **वैज्ञानिक दृष्टिकोण की आवश्यकता**
5. **हिंदी की जिम्मेदारियाँ**
6. **भाषा में वृद्धि क्यों होनी चाहिये ?**
7. **प्रसार-माध्यमों का योगदान**
8. **कम्प्यूटर से दोस्ती**
9. **वैज्ञानिकों का फर्ज**

स्थित्यंतर

सर्वप्रथम मैं आपको एक उद्धरण सुनाता हूँ:-

''..... दीर्घकाल के पश्चात आज हमें संसार में बड़े पैमाने पर द्वेष, पापाचरण, असत्य का बोलबाला आदि दुर्गुण दिखाई दे रहे हैं। भक्तिभाव तो नष्टप्राय ही है। सच्चाई और सादगी ये तो मजाक के विषय बन गये हैं। न्याय भी नाममात्र शेष है। सभी जगह घोटाले चल रहे हैं, मानो समाज किंकर्तव्यविमूढ़ हो चला है। योजना के अनुसार तो कुछ भी नहीं हो रहा....''

मैं आपसे पूछता हूँ कि यह वक्तव्य किसने दिया, कहाँ दिया ? शायद आप कहेंगे कि यह आज के किसी समाचारपत्र का संपादकीय है.... या किसी सज्जन धर्मात्मा की आधुनिक माहौल पर टिप्पणी है। यदि आप ऐसा सोच रहे हों तो आपका अनुमान गलत है!

इस उदाहरण के लिए आपको जाना होगा भूतकाल में, यूरोप में। लुई ले रॉय नामक फ्रांसीसी विचारक ने अपनी पुस्तक Vicissitude (स्थित्यंतर) में ये विचार व्यक्त किये थे। सन् 1575 में प्रकाशित यह पुस्तक तत्कालीन पाठकों में काफी लोकप्रिय एवं चर्चित रही। इसलिए यह मानना अनुचित नहीं होगा कि ये विचार उस जमाने की धारणा के द्योतक हैं। तो फिर ऐसी धारणा की वजह क्या थी ?

हम उस जमाने का इतिहास पढ़ें तो हमें पता-चलेगा कि आज के विज्ञान-युग का वह उष:काल था। चुंबक की खोज और उसकी दिशादर्शकता का उपयोग बढ़ता जा रहा था। नौकानयन की तकनीक में सुधार हो चला था और चुंबक की सहायता से विश्व के दूर-दूर के कोनों तक जाने के प्रयास हो रहे थे। युद्धों को अधिक विनाशकारी बनाने वाले गोला-बारूद भी अब प्रचार में थे। दूर-दूर की यात्राओं ने संपर्क बढ़ाया उसी तरह संपर्कजन्य रोगों को भी बढ़ावा दिया। मुद्रण की तकनीक ने विचारों को फैलाने में हाथ बटाया। पर इसके साथ ही परंपरागत विचारों का नयी विचारधाराओं से संघर्ष भी कराया। और ऐसे गतिशील माहौल में नव-निर्माण युग की शुरुआत हुई जिसने यूरोप को साहित्य-संगीत-कला में विश्व का केन्द्र स्थान बहाल किया। आज सिंहावलोकन में हम उस युग को यूरोप का स्वर्ण युग मानते हैं।

इस नवनिर्माण की प्रसूतिवेदनाओं को एक 'असुरक्षित' दृष्टिकोण से ले रॉय जैसे तत्कालीन विचारकों ने देखा। नयी खोजों, नई तकनीक, नये विचार इन सबके माध्यम से समाज में मूलभूत परिवर्तन होने जा रहे थे जिन्हें समझने में जनसाधारण, ही नहीं ले रॉय सदृश बुद्धिजीवी भी असफल रहे।

मैंने आज यह उदाहरण इसलिए दिया कि कुछ वैसा ही माहौल आज है। जैसा हम देखेंगे, आधुनिक मानव समाज भी विज्ञान और तकनीक की घुड़दौड़ में उन्नति और विकास के नामपर विभिन्न दिशाओं में खिंचाव और दबाव महसूस कर रहा है। उदाहरणस्वरूप मैं दो घटनाओं का जिक्र करूँगा। पहला उदाहरण हैं 1964 का, कॅलटेक संस्थान का।

उस वर्ष के अक्टूबर में शुरू होने वाले सत्र में मैं अभ्यागत वैज्ञानिक की हैसियत से कैलिफोर्निया इंस्टिट्यूट ऑफ टेक्नॉलजी में गया था। मेरी भेंट के दौरान मुझे दो विख्यात हस्तियों के बीच चर्चा सुनने का मौका मिला। यह एक सार्वजनिक कार्यक्रम था और वक्ता थे वैज्ञानिक फ्रेड हॉएल एवं विज्ञानकथा लेखक रे ब्रॅडबरी। चर्चा का विषय था: ''क्या विज्ञानगल्प भविष्यदर्शी होते हैं या समाज को झकझोरने वाले असंस्कृत माध्यम?'' इस चर्चा में रे ब्रॅडबरी की कही एक बात मुझे आज याद आ रही है। वे बोले ''मेरा जन्म 1920 का है, याने पहले विश्वयुद्ध के पश्चात का। तब से लेकर आजतक मैने अपने जीवन में विज्ञान के जो नये-नये अनुसंधान देखे हैं वे मेरे जन्म के समय गल्प में गिने जाते थे।'' सचमुच परमाणु विस्फोट, चंद्रमा पर मानव चरण, ॲण्टी बायॉटिक दवाइयाँ, टेलिव्हिजन, कंप्यूटर आदि 1920 में कल्पना विलास के भाग रहे थे। इतनी शीघ्रता से गल्प की वास्तविकता में परिणति होगी यह उस समय किसने सोचा था ?

स्थित्यंतर का दूसरा नमूना आल्विन टॉफ्लर की पुस्तक 'The future shock' में देखने को

मिलता है। यह पुस्तक आज से कुछ चार दशक पहले लिखी गई। लेखक ने वैज्ञानिक अनुसंधान और उनके तकनीक में रूपान्तर की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हुए यह प्रतिपादन किया है कि इस क्रिया का वेग शुरू-शुरू में धीमा था, पर कालानुसार चक्रवृद्धि ब्याज की तरह बढ़ता गया। इसके कुछ मिसाल देखें। यदि हम आदिमानव काल से लेकर आजतक-('आज' का मतलब लगभग 1970 से लेना होगा जब पुस्तक लिखी गई) के ज्ञात इतिहासकाल को 50,000 वर्ष मानकर उसका 800 कालखंडों में विभाजन करें तो एक खंड 62.5 वर्षो का हुआ। इसे मानव जीवनी का एक पैमाना मानकर लेखक ने कहा है कि 800 में से 650 पहली मानव-जीवनियाँ मानव ने गुफाओं में रहकर बिताईं। लेखन कला का प्रादुर्भाव पिछली 70 जीवनियों में हुआ तथा मुद्रण तकनीक का पिछली 6-7 जीवनियों में। जिस बिजली पर हमारा आधुनिक जीवन चलता है वह केवल पिछली दो जीवनियों से कार्यरत है। अंतरिक्ष विज्ञान, कंप्यूटर तथा परमाणु ऊर्जा का उपयोग ये सब (1970 के दृष्टिकोण से) तो केवल आधी जीवनियों के अरसे से परिचित हैं। यदि हम सोचें तो ऐसा पाएँगे कि दिनचर्या में हमारा संपर्क जिन-जिन वस्तुओं से बनता है वे सब मात्र एक-दो जीवनी पुरानी हैं।

ये उदाहरण इस बात को स्पष्ट करते हैं कि यद्यपि मानवसंस्कृति के इतिहास में साहित्य-संगीत-कला के मुकाबले में विज्ञान कम अरसे से आया है, तो भी आज उसका प्रभाव सर्वाधिक और बढ़ता जा रहा है। विज्ञान और तकनीक द्वारा दिनों दिन नई-नई चीजें हमारे जीवन में प्रवेश कर रही हैं। इस शीघ्र बदलते माहौल में मानव चकरा सा गया है, जैसे कोई वफे भोजन का भोक्ता जिसे खाद्य टेबल पर नए-नए पकवान आते दिखाई देते हों। ऐसी स्थिति में यदि वह संयम से काम न करे तो आगे चलकर उसे बीमारियों का सामना करना पड़ेगा। अब हम देखेंगे भविष्य के कुछ चित्र जो आगे आनेवाले 'पकवानों' की झलक प्रस्तुत करते हैं।

तकनीक की नई दिशाएँ

मिसाल के तौर पर हम कुछ भविष्यवेधी अनुमान देखेंगे, यद्यपि इस बात का खतरा हर विषय में रहेगा कि वास्तव और भविष्य में सामंजस्य का अभाव हो। अब तक के अनुभव यह बताते हैं कि वास्तविकता भविष्यवेध के मुकाबले अधिक तेज चलती है। फिर भी त्रुटियों से युक्त भविष्यवेध, भविष्यवेध के अभाव से कहीं अधिक उपयोगी साबित हुआ है क्योंकि इससे समाज को कुछ तो योजनाबद्धता प्राप्त होती है।

कम्प्यूटर:-कम्प्यूटर की महत्ता दिनोंदिन बढ़ रही है। मूर का नियम कहता है कि तकनीक की तरक्की की बदौलत हर दो वर्षों में गणन क्षमता दुगुनी हो जाती है। 1950 के मुकाबले 1965 के कम्प्यूटर हजार गुने शक्तिशाली थे तो 1980 के कम्प्यूटर दस लाख गुने। और उनके मुकाबले पाँच वर्ष पहले के (सन् 2005) के कम्प्यूटर एक अरब गुने! बढ़ती क्षमता के साथ कम्प्यूटरों का आकार घटता जाता है। 1950 का कम्प्यूटर एक बड़े हाल जितनी जगह लेता था। अब उससे दस अरब गुने कम्प्यूटर हथेली में समा जाएं, वो भी निकट भविष्य में, तो अचरज की बात नहीं होगी। जिस 'क्रे' कम्प्यूटर के इस्तेमाल पर अमेरिका पाबंदियाँ लगा रहा था वैसे कम्प्यूटर आगे चलकर

बच्चों के खिलौनों में काम करें तो भी आश्चर्य नहीं।

मोबाइल फोन:-मोबाइल फोन की तकनीक की बढ़ती कमान से हम सभी परिचित हैं। 30-40 वर्ग सेंटीमीटर क्षेत्रफल वाले और एक सेंटीमीटर मोटाई के इस फोन में आजकल कितने विविध साधन भरे हैं- जैसे फोटो कैमरा, व्हिडियो, रेडियो, टी.व्ही., इंटरनेट इत्यादि। अधिकाधिक जानकारी देने वाले तत्सम अन्य उपकरण कुछ ही सालों में उपलब्ध होंगे। टेलीकॉन्फरंसिंग, दूरशिक्षा, पुस्तकालय, संदर्भ आदि ऐसे उपकरणों द्वारा लीलया संभव होंगे।

फोटॉनिक्स:- बीसवीं शताब्दी में इलेक्ट्रॉनिक्स ने तरक्की कर उपकरणों की दुनिया में बाजी मारी। अब वह दिन भी दूर नहीं जहाँ उसकी जगह फोटॉनिक्स अपना प्रभाव दिखाएगा। इलेक्ट्रॉन के मुकाबले प्रकाशकण फोटॉन अवश्य अधिक प्रभावशाली हो सके- पर उसकी तकनीक अभी उतनी विकसित नहीं हो पाई है। परंतु, यह अपेक्षित है कि कम्प्यूटर एवं जानकारी के माध्यम फोटॉनिक्स के विकास और इस्तेमाल के साथ अधिक कार्यक्षम होंगे।

यातायात:- चुबंकीय शक्ति द्वारा उठाई गई, हवा में चलने वाली, रेलगाड़ियाँ प्रतिघंटा 500 किलोमीटर की चाल हासिल कर लेंगी। ये गाड़ियाँ मुंबई से दिल्ली की दूरी महज तीन घंटों में तथा लंदन से न्यूयॉर्क दस घंटों में तय करेंगी। लंदन-न्यूयॉर्क यात्रा समुद्र में होने के कारण समुद्र में खास सुरंगें रखकर उनमें से गाड़ियाँ यात्रा करेंगी। ऐसी हालत में उनकी चाल बढ़ाकर प्रतिघंटा 2000 कि.मी. की जा सकती है। तब तो ये आज के हवाई जहाजों से भी अधिक तेज भागेंगी।

खुद हवाई जहाज भी 1000 यात्रियों को लेकर प्रतिघंटा 3000 कि.मी. से अधिक, याने ध्वनि के तिगुने वेग से यात्रा करेंगे और जहाँ व्यक्तिगत यातायात के साधन हैं, उनमें सौर ऊर्जा पर चलने वाली गाड़ियाँ पेट्रोल वाली मोटरकारों का स्थान लेंगी। और जी.पी. एस. तथा दूर के उपग्रहों द्वारा लिए विहंगम चित्र इन 'अत्याधुनिक' गाड़ियों को गंतव्य स्थान पर यांत्रिक चालक के हाथों पहुँचा देंगे।

दवाइयाँ:- अभी अभी मानव जी नॉम परियोजना पूरी हुई। विविध स्तरों पर इसे आगे बढ़ाया जाएगा। वह दिन भी दूर नहीं जब हर मानव अपनी जीन्स का (अपनी शरीर-रचना का) पूरा मानचित्र साथ रखेगा। जब भी कभी उसे चोट लगे या किसी रोग का सामना करना पड़े तब दवाइयों और शल्यक्रिया के लिए यह मानचित्र उपयोगी साबित होगा। वैसे भी आज असाध्य माने जाने वाले रोगों पर विजय पाने में वैद्यकशास्त्र को सफलता मिलेगी।

साधारण रूप से हमें इस भविष्यवाणी का अनुभव मिलेगा: ''जैसे बीसवीं सदी भौतिक विज्ञान में क्रांतिकारी खोज ले आई वैसे इक्कीसवीं सदी जीवशास्त्र में क्रान्ति लाएंगी।''

कुछ चिंता के विषय

स्थित्यंतर का आज का माहौल और भविष्य की ये झाँकियाँ हमें चौकन्ने रहने की सलाह दें तो अचरज की बात नहीं। जैसे ले रॉय ने 4-5 सदियों पहले अनुभव किया, आज का समाज भी विज्ञान-तकनीक द्वारा परोसे जाने वाली अनुसंधानों की दावत पचा नहीं पा रहा है। इसलिए मानव

समाज के आगे कुछ गंभीर प्रश्न उपास्थित हुए हैं। इनमें से कुछ का जिक्र मैं यहाँ करना चाहूँगा।

पर्यावरण पर आक्रमण:- बढ़ते औद्योगीकरण ने वह भी पर्याप्त सावधानियाँ न बरतने के कारण, हमें ऐसी स्थिति में ला दिया है कि हमारी पृथ्वी पर रहना मुश्किल होता जा रहा है। सूर्य का प्रकाश; शुद्ध हवा और पीने का पानी इन तीन मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति दिनों दिन अधिक कठिन होती जा रही है। एक ओर औद्योगीकरण से अपना जीवनस्तर उठाने का प्रयत्न और दूसरी ओर इस कारण होने वाली पर्यावरण की हानि! इस कैंची में फँसा मानव समाज कुछ अप्रिय पर आवश्यक निर्णय नहीं ले पा रहा है।

जीव-तकनीक का संभावित खतरा:-'क्लोनिंग' के उदाहरण ने डॉली भेड़ का चमत्कार भले ही प्रस्तुत किया हो, उसके साथ अनेक गंभीर प्रश्न सामने लाए। जीवशास्त्र की अपनी तकनीक जहाँ मंगलदायी सिद्ध हुई वहीं विध्वंसक शस्त्रास्त्र, वंशवाद के दुष्परिणाम, प्रकृति के करोबार से छेड़खान जैसे चिंताजनक रूपों में भी प्रकट हुई। मुक्त समाज मानव जिज्ञासा पूर्ति के लिए किये जाने वाले अनुसंधान को प्रोत्साहित करता आया है। पर अब सवाल उठता है, क्या अनुसंधान की कुछ दिशाओं पर समाज कल्याण को ध्यान में रखते हुए पाबंदी की जरूरत है?

यंत्रावलंबन के दुष्परिणाम: एक संस्कृत सुभाषित है:-

काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।
व्यसनेन तु मूर्खाणां निद्र या कलहेन वा।।

बुद्धिमान लोग काव्य-शास्त्र-विनोद में अपना समय बिताते हैं। पर मूर्खों का वक्त बरबाद होता है व्यसन-निद्रा और झगड़ों में।

जैसे-जैसे यंत्रावलंबन बढ़ता गया, जो काम पहले मानव करते थे वे अब यंत्रों द्वारा अधिक तेज और कम त्रुटियों वाले किये जाने लगे। इससे उत्पादन बढ़ा और सुधरा पर अधिकाधिक मानव बेकारी का अनुभव लेने लगे। अंग्रेजी कहावत है कि आलसी व्यक्ति के मगज़ में शैतान की कार्यशाला चलती है। इसी न्याय से उद्योगप्रधान तथाकथित धनी देशों में बेकारी बढ़ गई है, और ऐसे लोगों का वक्त सकारात्मक रूप से नहीं व्यतीत होता बल्कि मानसिक बीमारियाँ, अपराध, पापकर्म आदि में गुजरता है। इस प्रवृत्ति को कैसे रोका जाए?

वैज्ञानिक दृष्टिकोण की आवश्यकता

यह स्पष्ट है कि बिगड़ते माहौल पर काबू पाने के लिए मानव समाज को सोच समझकर 'सही' एवं 'गलत' का भेद समझने के लिए जिस 'नीर-क्षीर विवेक' की जरूरत है वह हम सबको वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने की सलाह देता है।

वैज्ञानिक दृष्किोण विज्ञान की उन्नति के लिए आवश्यक साबित हुआ है- वास्तव में विज्ञान के तत्वावधान में इस दृष्टिकोण की महत्ता पहले दिखाई दी। इसीलिए 'वैज्ञानिक' इस विशेषण को इस दृष्टिकोण से जोड़ा गया। अन्यथा यह दृष्टिकोण जनसाधारण के लिए भी आवश्यक और उपयोगी है।

विज्ञान की परंपरा रही है कि कोई भी कथन बिना जाँच पड़ताल के नहीं माना जाता। भले ही कोई विख्यात वैज्ञानिक उस कथन का समर्थन करे, पर प्रयोग करके ही उसकी सच्चाई परखी जाती है। स्वयं आइन्स्टाइन क्वांटम सिद्धांत के कुछ मूल तत्वों का विरोध करते थे, पर प्रयोगों ने उन तत्वों का समर्थन किया और वे स्वीकृत हुए।

स्वतंत्रता पूर्व काल में, अपनी पुस्तक 'भारत की खोज' में पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कहा था कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण को तत्कालीन भारतीय जनता नहीं अपना रही थी और बिना सोचे समझे पारंपरिक रूढ़ियों का पालनकर रही थी क्योंकि देश उस समय गुलामी की बेड़ियों में बंद था। उनकी यह आशा थी कि स्वतंत्र भारत की जनता खुद विचार कर योग्य निर्णय लेना सीखेगी।

पर ऐसा नहीं हुआ। 1940 में जिस प्रकार जनमानसपटल पर अंधश्रद्धाओं का राज था उसी प्रकार आज भी है। इसके कुछ मिसाल देखें:-

'ग्रहों में मानव जीवन पर असर डालने की शक्ति है' इस कथन पर विश्वास ' पत्रिका जमे तो विवाह सुखी' इस कथन को मानकर चलना। 'किसी व्यक्ति ने कोई चमत्कार कर दिखाया तो उसमें दिव्य शक्ति है' ऐसा मानना। 'घर की बनावट कैसी है उसका रहने वाले के जीवन पर परिणाम होता है' इस पर विश्वास। 'गणेशजी दूध पी रहे हैं' इस घटना की वास्तविकता परखे बिना स्वीकार करना इत्यादि, इत्यादि...। आज विज्ञान के समाज पर होने वाले भले बुरे परिणामों को परखने और जरूरत हो वहाँ उनपर उचित कार्यवाही करने, के लिए समाज के पास वैज्ञानिक दृष्टिकोण होना अत्यावश्यक है।

पूरी गीता समझाने के बाद भगवान् श्री कृष्ण अर्जुन से कहते हैं:-

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्यात् गुह्यतरं मया।
विमृश्यैतत् अशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु।।

''मैंने तुम्हे गुह्य से गुह्य ज्ञान सुनाया है। उस पर पूरी तरह विचारविमर्श करके जो करना चाहते हो वह करो।'' यहाँ वैज्ञानिक दृष्टिकोण का सार हम देखते हैं। कृष्ण यह नहीं चाहते कि केवल उनके जैसे महान् व्यक्ति के कहने पर अर्जुन उनकी सलाह मानकर चले। वे उल्टे यह अपेक्षा रखते हैं कि उनकी बातों पर अर्जुन पूरी तरह सोच समझकर निर्णय ले।

इसी वैज्ञानिक दृष्टिकोण द्वारा समाज से आज यह अपेक्षा है कि विज्ञान की ताकत को, उसकी गतिशीलता को पूरी तरह समझे और फिर निर्णय लें कि कौन सी दिशा में उसे बढ़ने देना है और कौन सी दिशा में उस पर लगाम की जरूरत है। क्योंकि यदि इस शक्तिशाली अस्त्र को अपने प्रभाव में लाने में आज समाज असमर्थ रहा तो उसे आगे चलकर भारी कीमत चुकानी पड़ेगी।

हिंदी की जिम्मेदारियाँ

इस पार्श्वभूमि में आज हमें भाषा की महत्ता को परखना है। जैसा मैने अभी कहा, समाज से यह अपेक्षा है कि वह विज्ञान की शक्ति को समझे और उसे विधायक कार्यों में लगाए तथा विनाशक कार्यों से दूर रखे। इसके लिए यह आवश्यक है कि विज्ञान के बारे में आवश्यक जानकारी समाज

को सदैव मिलती रहे। और इस बात से सभी सहमत होंगे कि इस समाज प्रबोधन का माध्यम समाज की 'अपनी' भाषा में हो।

भारत जैसे विशाल देश के लिए इस कार्य में हिन्दी की भूमिका कितनी महत्वपूर्ण है यह अलग से समझाने की जरूरत नहीं। पिछले 10-15 वर्षों में भारत की विकसित देश बनने की ओर तेजी से घुड़दौड़ जारी है। ऐसी हालत में विज्ञान तथा तकनीक से मिलने वाले लाभों की अच्छी जानकारी मिलनी आवश्यक है। साथ ही साथ विज्ञान तथा तकनीक के अनुसंधानों से जुड़े दुष्परिणामों की भी जानकारी उपलब्ध होनी आवश्यक है।

पुराने जमाने में भक्तिरस प्रधान सुखी जीवन के उद्देश्य से सूरदास, तुलसीदास जैसे संतसाहित्यकारों ने लोक प्रबोधन किया। इस जमाने में विज्ञान जनसाधारण तक पहुँचाने का काम हिंदी को करना है। जो काम पहले ब्रजभाषा, अवधी और भोजपुरी भाषाओं ने संत साहित्य के लिए किया वही हिंदी को आज विज्ञान के लिए करना है। यद्यपि जिस पार्श्वभूमि में मैंने इस आवश्यकता पर जोर दिया है, उसके लिए आम सहमति अपेक्षित है फिर भी ऐसी भी कुछ लोगों की धारणा है कि जागतिक भाषा के रूप में अंग्रेजी भाषा हिंदी के बजाए अधिक प्रभावशाली होगी।

मैं इस धारणा से सहमत नहीं हूँ। मेरी दलील के समर्थन में मैं एक किस्सा सुनाता हूँ- आधुनिक विज्ञान के शिखर तक पहुँचे हुए वैज्ञानिक अलबर्ट आइन्स्टाइन का। ऐसा कहा जाता है कि यदि आइन्स्टाइन अपने विषय पर किसी अन्य वैज्ञानिक के साथ चर्चा कर रहे हों तो चर्चा का आरंभ अंग्रेजी भाषा में होता था। पर चर्चा के दौरान अगर आइन्स्टाइन बहुत उत्तेजित हो जाते थे तो वे अपनी मातृभाषा जर्मन में बोलने लगते। अपनी मातृभाषा में कोई भी समझने-समझाने का काम सर्वाधिक कुशलता से कर पाता है।

तो हिंदी भाषा को इस कर्त्तव्य को निभाने के लिए आगे आना होगा। जहाँ तक हिंदीभाषी राज्यों का सवाल है वहाँ तो हिंदी का यह 'जानकारी की भाषा' जैसा कर्तव्य तो रहेगा ही पर अन्य राज्यों में भी हिंदी की विज्ञान समझने-समझाने की क्षमता उपयोगी साबित होगी क्योंकि वहाँ की भाषाएँ हिंदी से मिलने वाली जानकारी का लाभ उठा सकती हैं। पर इस भूमिका को निभाने के लिए हिंदी को और हिंदी भाषियों को अपने दृष्टिकोण को अधिक व्यापक बनाना होगा।

भाषा में वृद्धि क्यों होनी चाहिये ?

यदि हिंदी को विज्ञान समझाने तथा समझने की भाषा बनाना है तो उसमें विस्तार होना आवश्यक है। विज्ञान और तकनीक की देनों का वर्णन करने के लिए सौ साल पहले की हिंदी पर्याप्त नहीं होगी। रेडिओ, टेलीफोन, मोटरकार, टूथपेस्ट आदि असंख्य चीजों के नाम हम रोज के संभाषण, वर्णन, पठन आदि में लेते हैं। उनके लिये अनुवादात्मक हिंदी शब्द बनाना मेरे विचार से व्यर्थ का परिश्रम है। रेलवे सिग्नल के लिए 'लौहचक्रगामिनी गमनागमन दर्शक' यद्यपि सही कहा जा सकता है तो भी उचित कदापि नहीं।

जब मैं स्कूल में पढ़ता था मेरी पाठ्यपुस्तकों की हिंदी उर्दू शब्दों से मिश्रित हुआ करती थी।

मुंशी प्रेमचंद की कहानियों या उपन्यासों की हिन्दी पढ़ने में जो मजा आता था वह उन शब्दों के संस्कृत अनुवाद डालकर की गई 'परिष्कृत' भाषा से नहीं आता। आज बड़े परिश्रम से उस हिन्दुस्तानी का संस्कृतीकरण करके बनाई भाषा कृत्रिम लगती है।

वास्तव में विज्ञान-तकनीक के विकास के साथ अंग्रेजी भाषा को अपने शब्द भंडार की वृद्धि करनी पड़ी। इसके अलावा अपनी साम्राज्यवाद की नीति के लिए संसार के कोने-कोने तक जाने वाले अंग्रेजों ने पराई भाषा के शब्द बिना हिचकिचाहट के समा लिए। अंग्रेजी शब्दकोष खोल के देखें: उसमें आप हिंदी भाषा से लिए शब्द भी पाएँगे। पराए शब्दों के इस्तेमाल से भाषा अपवित्र नहीं होती बल्कि अधिक तगड़ी बनती है। इसलिए बदलते माहौल में नए शब्दों को चाहे वे किसी भी भाषा से हों पर सर्वधारण रूप से इस्तेमाल किये जाते हों- अपने शब्दभंडार में समा लेना हिंदी के लिए भी आवश्यक है।

विज्ञान के पारिभाषिक शब्दों के लिए भारतीय भाषाओं में संस्कृतावलंबी नए शब्द बनाए जाते हैं। लेकिन यदि ऐसे शब्द साधारण बातचीत में इस्तेमाल न होते हों तो यह परिश्रम क्या व्यर्थ नहीं हुआ? इसके अलावा विभिन्न भारतीय भाषाओं में-संस्कृत से उत्पन्न होते हुए भी- पारिभाषिक शब्दों की एक-सूत्रता नहीं। उदाहरण के लिए हिंदी और मराठी के कुछ शब्द देखें। ॲटम को हिंदी में परमाणु और मराठी में अणु कहते हैं। मॉलेक्यूल को हिंदी में अणु तो मराठी में रेणु कहते हैं। अखिल भारतीय स्तर पर विशेषज्ञों की समिति सभी संस्कृत से निकली भाषाओं के लिए एक पारिभाषिक शब्द सूची बनाती तो यह संभ्रम नहीं होता। पर मेरे विचार से हिन्दी को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृत वैज्ञानिक या तकनीकी शब्द अपनाने में कोई हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिए। इससे हिंदी भाषियों को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर होने वाली खोजों, घटनाओं, आदि की जानकारी लेने में सुभीता होगा। ऐसी भूमिका हिंदी को कमजोर नहीं बल्कि सशक्त बनाएगी।

प्रसार माध्यमों का योगदान

आज की जीवनचर्या विविध प्रसार माध्यमों से अलिप्त नहीं रह सकती। समाचार, घटनाओं पर टिप्पणियाँ, राजनीतिक तथा सामाजिक मुद्दों पर चर्चा, खेल के विविध रूप इत्यादि पर रेडिओ, टी.व्ही. समाचार पत्र आदि जो समय खर्च करते हैं उस में हिंदी का भी सहभाग रहना जरूरी है। ज्ञान-विज्ञान की वृद्धि में इन माध्यमों का योगदान भी अगर केवल अंग्रेजी में होने लगे तो यह हिंदी के लिए घातक सिद्ध होगा।

इस संदर्भ में यह एक अच्छी घटना है कि डिस्कवरी जैसे जानकारी के चैनल पर अंग्रेजी कार्यक्रमों को हिंदी में 'डब' किए रूप में भी दिखाया जाता है। पर इससे भी बेहतर यह होगा कि ऐसे कार्यक्रम भारत में बनें और मूल हिंदी में बनें। चूँकि हिदी जनता की भाषा है, ऐसे कार्यक्रम हिंदी भाषियों को अधिक रोचक लगेंगे।

इस संदर्भ में मैं अपने दो अनुभव यहाँ सुनाना चाहूँगा। जब कार्ल सेगन की मशहूर श्रंखला 'कॉस्मॉस' भारत में दिखाई गई तब कार्यक्रम प्रसारक की विनती पर मैंने हर कड़ी के आरंभ में

उस दिन के कार्यक्रम का सारांश हिंदी में सुनाया। महज पाँच मिनट के इस आख्यान के बारे में मुझे अनेक श्रोताओं से प्रतिक्रिया आई कि 'आपकी प्रस्तावना की बदौलत हमें कार्यक्रम समझने में सुविधा हुई।' तत्पश्चात् मैंने कोई 17 कड़ियों का एक कार्यक्रम 'ब्रह्माण्ड' नाम से बनाया जो हिंदी में था और दूरदर्शन पर कई बार दिखाया गया। यहाँ भी मुझे असंख्य श्रोताओं से अनुकूल प्रतिक्रियाएँ मिलीं। मेरा दूसरा अनुभव था 'द एस्ट्रोनोमिकल सोसाइटी ऑफ इण्डिया' की राष्ट्रीय सभा का जो 1981 में गोरखपुर में आयोजित की गई थी। मुझे उसमें एक सार्वजनिक व्याख्यान देने के लिए आमंत्रित किया गया था। सोसायटी की प्रथा के अनुसार यह व्याख्यान अंग्रेजी में होने वाला था। पर जब व्याख्यान का समय आया, लेक्चर हॉल श्रोताओं से ठसाठस भर गया था। उसे निर्देशित कर व्याख्यान के आयोजकों ने मुझसे बिनती की: ''ये सब श्रोता अधिकांश हिंदी भाषी हैं यदि आप हिंदी में बोलें तो श्रोताओं को वह बहुत रोचक लगेगा।'' मैंने तब तक हिंदी में एक घंटे का भाषण नहीं दिया था, न तो मैं हिंदी में बोलने का अभ्यास करके आया था। फिर भी मैंने यह आव्हान स्वीकार किया। जब मैंने शुरुआत की: ''देवियों और सज्जनों.....'' तब तालियों की जो बरसात हुई वह आज भी मेरे कानों में गूँज रही है।

कम्प्यूटर से दोस्ती

ये सब बातें कहने सुनने का एक अहम मुद्दा है कम्प्यूटरों से जुड़ाव। जो भाषा आज कम्प्यूटरों के उपयोग में हाथ बटा सकेगी वही भाषा आज के माहौल में टिकेगी और पनपेगी। हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं का इस्तेमाल कम्प्यूटर पर लेखन के लिए, ई-मेल के माध्यम स्वरूप, वेबसाइट पर जानकारी की खोज में इत्यादि, इत्यादि रूपों में होने लगा है। एक कठिन प्रश्न लिपियों का है/था जो अब अधिकतर उपयोगों के लिए सुलझ गया है। लिखे लेख का संपादन, मुद्रण आदि अब अंग्रेजी की उपलब्ध सुविधाओं का फायदा उठाने लगे हैं।

पर केवल सॉफ्टवेयर निर्माण पर्याप्त नहीं! जैसा कि अंग्रेजी कहावत है, आप घोड़े को पानी के पास ले जा सकते हैं पर उसे पानी पीने को बाध्य नहीं कर सकते। कम्प्यूटर हिंदी के इस्तेमाल के लिए सब सुविधाएँ प्रदान करे पर उनको काम में लाने की जिम्मेदारी हिंदी भाषियों की हैं। इस दिशा में आगे बढ़ने के लिए जनजागरण और जनशिक्षा की आवश्यकता है। ऐसे सभी लोगों को जो हिंदी से अत्मीयता रखते हैं, इस बात की जानकारी मिलनी चाहिए कि कम्प्यूटर में क्या क्या सुविधाएँ उपलब्ध हैं जिनका वे फायदा उठा सकते हैं।

वैज्ञानिकों का फ़र्ज

गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरितमानस के आरंभ में लिखा:-

स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथगाथा
भाषानिबंधमतिमंजुलमातनोति।

यद्यपि यह ग्रंथ रचना 'स्वान्तः सुखाय' की गई, गोस्वामीजी ने रामायण, राम महिमा,

रामभक्ति आदि का प्रसार किया और जन साधारण में एक आत्मविश्वास की भावना आरोपित की। सुविचार का प्रचार किया। भटकती जीवन शैली को दिशा दर्शन कराया।

अधिकांश वैज्ञानिक ऐसा कहेंगे कि वे विज्ञान के क्षेत्र में शोधकार्य और शिक्षादान स्वान्त: सुखाय कर रहे हैं। अपने शैक्षिक उद्देश्यों को हासिल करने के सिवाय उनका जनसाधारण से कोई लेना देना नहीं।

मेरे विचार से यह भूमिका आज के काल में उचित नहीं। जैसा मैंने प्रारंभ में कहा था, समाज एक स्थित्यंतर का अनुभव कर रहा है जिसकी प्रेरक शक्ति विज्ञान में हैं। इस स्थित्यंतर में धनात्मक और ऋणात्मक दोनों तरह के अनुभवों का सामना उसे करना पड़ रहा है। कभी कभी तो धनात्मक/ ऋणात्मक फ़र्क समझ में भी नहीं आता। ऐसे अवसरों पर समाज को प्रबोधन की आवश्यकता है, जानकारी की आवश्यकता है, जो उसे वैज्ञानिक ही दे सकते हैं। कम से कम योग्य निर्णय लेने के लिये संबंधित तथ्य कौन-कौन से हैं, इतना तो वैज्ञानिक स्पष्ट कर सकते हैं ताकि समाज सोच समझकर सही निर्णय ले।

अत: विज्ञान और समाज के बीच की खाई उथली और सँकरी बनाने की जिम्मेदारी वैज्ञानिकों की है। जनसाधारण की भाषा में विज्ञान की खूबियाँ, उसकी खोजों का महत्व, तकनीक के धनात्मक/ऋणात्मक पार्श्वप्रभाव आदि की जानकारी देने में वैज्ञानिकों को हाथ बटाना चाहिए। हाथी दाँत की मीनार से उतर कर वैज्ञानिक जनसाधारण से वार्तालाप करते जायें! रोज रोज की बात नहीं। हफ्ते में एक दिन भी इस विज्ञान प्रसार के लिए कल्याणकारी साबित होगा।

(नरेश मेहता स्मृति वाङ्मय सम्मान के अवसर पर हिन्दी भवन, भोपाल में दिया गया व्याख्यान)

अंतर विश्वविद्यालय केन्द्र, खगोल विज्ञान और
खगोल भौतिकी, पुणे-411007 (महा.)